ISSN 2455-5169

परिवर्तन : साहित्य, संस्कृति एवं सिनेमा की वैचारिकी

आदिवासी विमर्श की सार्थक साहित्यक हस्तक्षेप : निर्मला पुतुल की कविताएँ

विद्या. ए. एस

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
केरल विश्वविद्यालय,
तिरुवनंतपुरम, केरल
vidhyapillai88@gmail.com

उत्तराधुनिक परिप्रेक्ष्य के हिन्दी साहित्य में अल्पसंख्यक समाज की दशा पर पुनर्विचार हो रहा है जो 'विमर्श' के नाम से अभिहित है। आदिवासी लेखन हिन्दी के अस्मितावादी विमर्शों में प्रथम गणनीय है। क्योंकि आदिवासी समाज की सांस्कृतिक चिंतन दूसरों से बहुत भिन्न है। इनकी अपनी परंपराएँ हैं। सामाजिक भावना से ओतप्रोत ये भोले लोग इस परंपरा को सुदृढ़ बनाने के लिए सदा जागरूक हैं। लेकिन आजकल विकास के नाम पर हो रहे औद्योगीकरण का सबसे अधिक बुरा प्रभाव आदिवासियों पर पड़ रहा है। जंगल नष्ट होने से वे लोग विस्थापित होने लगे। आदिवासी विमर्श आदिमजाति के ऐसे जीवन मूल्यों को केद्र में रखकर, उदित हुई साहित्यिक विमर्श की नई पहचान है।

रमणिका गुप्ता के अनुसार "आदिवासी समाज से आदिवासी साहित्य अलग रह ही नहीं रह सकता। आदिवासी साहित्य का एक भाग समझे जानेवाले लोक साहित्य का आदिवासी समाज से बहुत निकट का संबंध है। इस संबंध की सदियाँ गवाह है। यह साहित्य उनकी प्रेरणा प्रवृत्ति तथा जीवन संघर्ष के दर्शन करता है।"[1]

सभी साहित्यिक उद्यम के पीछे एक सामाजिक शक्ति रहती है। शिक्षा के बढ़ते प्रसार के कारण अपने समुदाय के साथ हो रहे शोषण और अत्याचार के खिलाफ आदिवासी साहित्यकार आवाज़ उठा रहे हैं। इन रचनाकारों ने अपने अस्तित्व के संघर्ष में कविता को प्रमुख साधना बनाया है। विविधताओं से भरे आदिवासी कविता जगत को मौखिक लोकगीतों की समृद्ध परंपरा का लाभ भी मिला है।

आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल की प्रथम हिन्दी कविता संग्रह है 'नगाड़े की तरह बजते शब्द'। इस संग्रह में आदिवासी जीवन के हर पक्ष को चित्रित किया गया है। 'बाहामुनी' नामक उनकी कविता आदिवासियों के जीवन परिप्रेक्ष्य का एक ऐसा बिम्ब खड़ी करती है जो उन लोगों द्वारा अनुभूत शोषण या असमानता को उद्घाटित करते हुए लगते हैं। जैसे –

"कितनी भोली हो तुम
कि जहाँ तक जाती है तुम्हारी नज़र
वहीं तक समझती हो अपनी दुनिया
जबकि तुम नहीं जानती कि तुम्हारी दुनिया जैसी
कई-कई दुनियाएँ शामिल हैं इस दुनिया में।"[2]

निर्मला पुतुल की कविताएँ जंगल के भीतरी इलाकों में रहने वालों के आत्माभिव्यक्ति को लिपिबद्ध करने का सफल प्रयास है। विकास के नाम पर हो रहे विस्थापन से विद्रोहित जनजाति के तमाम यातनाओं के बारे में बातचीत करते हुए उनकी कविताएँ साहित्यिक दुनियां में हलचल मचाती हैं। जिनमें जीवन के कोमल पक्षों से ज्यादा क्रूर यथार्थ की व्याख्या है। अन्याय के खिलाफ उठे इस आवाज से अजब सवाल पाठकों के मन में उत्पन्न हो जाते हैं -

"अजीब तमाशा है हमारे झारखण्ड की राजनीति का
कोई सरकार बनाने की बात करता है तो कोई
सरकार गिराने की
तो कोई बचाने केलिए करता है सौदा
ऐसे में दो पाटों के बीच जनता के बीच पिस रही है
और विकास के नाम पर विस्थापन झेल रही है।"[3]

उनकी रचनाकर्म का आधारभूत तत्त्व अपने परिवेश यानी संथाल परगना है जहाँ आधुनिकीकरण, विस्थापन और बेरोजगारी के रूप में विराजमान है। विकास के नाम पर जांगल काटते वक्त उस जंगल से जुड़ा आदिवासी जीवन नष्ट हो जाता है। फलतः वे भूखमरी और सांप्रदायिकता का शिकार बन जाते हैं। अगर इसके विरुद्ध आवाज़ उठाये तो नक्सल का आरोप। फिर भी निर्मलाजी की कविताएँ इन्हीं वास्तविकताओं से दूर नहीं है। वे खुलकर कहती हैं –

"चर्चा करना चाहती हूँ आपसे
भूख बीमारी से लड़ते-मरते मंगरू, बुधवा और
इलाज केलिए राशनकार्ड गिरवी रखनेवाले
समरू पहाडिया की बात करना चाहती हूँ
जड़ खाकर जिन्दा संतालों और

चूहे पकाकर खा रहे भूखे नंगे
पहाड़िया बच्चों की बात करना चाहती हूँ।"[4]

निर्मलाजी की कविताओं में अभिव्यक्त नारी चिंतन भोली आदिवासी नारी को वैश्विक नारी बनाने का अदम्य प्रयास है। स्त्रीवाद के पाखण्ड पर उन्हें नाराज़गी है। उसे वह 'एक बार फिर' कविता में व्यक्त करती हैं। बाहर से आए दिक्कुओं से हो रहे शारीरिक एवं यौन शोषण के प्रति वे अपने समाज के स्त्री जाति को जागृति प्रदान करती है और उसके विरुद्ध आवाज़ उठाने की उद्घोषणा करती हैं। पुतुलजी के अनुसार वर्तमान कविता आदिवासी युवतियों के मदमाता यौवन की अभिव्यक्ति मात्र में न सीमित होकर आत्मसम्मान और परिस्थितियों के प्रति भी संवेदनशील होनी चाहिए। 'आदिवासी स्त्रियाँ', 'बाहामुनी', 'बिटिया मुर्मू के लिए', 'सुगिया' जैसी उनकी कविताएँ आदिवासी समाज की स्त्री व्यथा का सच्चा दस्तावेज है। पितृसत्तात्मक वर्चस्व के खिलाफ प्रतिशोध का स्वर है उनकी ये कविताएँ। खुद आदिवासी स्त्री होने के नाते एक आदिवासी स्त्री की पीड़ा एवं और उनके साथ हो रहे अत्याचार पुतुलजी की कविताओं को अधिक जीवंतता प्रदान कर देती है।

"अपनी कल्पना में हर रोज
एक ही समय में स्वयं को
हर बेचैन स्त्री तलाशती है
घर प्रेम और जाती से अलग
अपनी एक ऐसी ज़मीन
जो सिर्फ उसकी अपनी हो
एक उन्मुक्त आकाश
जो शब्द से परे हो
एक हाथ नहीं
उसके होने का आभास हो।"[5]

जंगलों के बीच रहने वाले इन जनजातियों के लिए प्रकृति एक खुली किताब के सामान है। वे प्रकृति पाठ में प्रवीण होते हैं। उनके रीति-रिवाज़, आचार-विचार, पर्व-त्योहार सबका संबंध प्रकृति पर निर्भर हैं। लेकिन आज जंगल की मिट्टी में रचे-बसे आदिवासियों का सबसे बड़ा दुःख है अपनी ज़मीन से बेदखल

होना। जंगल के अभाव में आज उनके पास सिर्फ बेबसी है। 'संथाल परगना' कविता में इसकी शब्दाभिव्यक्ति है।

"बाज़ार की तरफ भागते
सब कुछ गड्डमड्ड हो गया है इन दिनों यहाँ
उखड़ गए हैं बड़े-बड़े पुराने पेड़
और कंक्रीट के पसरते जंगल में
खो गयी है इसकी पहचान।"[6]

यह चेतना परिस्थिति से संबंधित है। इसलिए यह आदिवासी समाज तक सीमित नहीं है। प्रकृति के अधीन जीने वाले हर मानव समाज में हो रहे एक खतरनाक परिस्थिति के बारे में पुतुल जी की लेखनी चलती है ।

अपने समाज के ऊपर हो रहे भीषण समस्यों से पुतुल जी का मन चिंतित है और उस चिंतन को कविता के माध्यम से पाठकों तक पहुंचाती हैं। उनकी कविता केवल शब्दों तक सीमित नहीं है। वह नगाड़े की तरह बजने वाली है। अभिव्यक्ति की सार्थकता में जंगल जैसे विशाल भी है। ये कविताएँ सभ्य मानने वाले आधुनिक समाज में व्याप्त मानसिक गन्दगी का जायजा हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर देती है। पृथ्वी के मूल निवासियों को हाशिए पर डालने का षड्यंत्र रचनेवालों के प्रति पुतुलजी का आह्वान कभी एक चेतावनी बन जाती है ।

"तुम कहते हो
मेरी सोच गलत है
चीज़ों और मुद्दों को
देखने का नज़रिया ठीक नहीं है मेरा
आपत्ती है तुम्हें
मेरे विरोध जताने के तरीके पर।"[7]

निर्मलाजी की कविताएँ क्रांतदर्शी है। वे अपनी कविताओं में अपनी पीड़ा व्यक्त करके उसका समाधान ढूँढ़ रहे हैं। पूँजीवर्ग, सभ्य समाज एवं सरकारी कानूनों से वंचित एक जनता की अनुभूतियों का प्रस्फुटन है।

सन्दर्भ :

1. 'आदिवासी साहित्य यात्रा', सं।रमणिका गुप्ता, पृ.28
2. 'बाहामुनी' - 'नगाड़े की तरह बजते शब्द', निर्मला पुतुल, पृ.12
3. 'झारखण्ड का सच' –'बेघर सपने', निर्मला पुतुल, पृ. 85
4. 'आपके शहर में, आपके बीच रहते, आपके लिए' – वही, पृ. 45
5. 'अपनी ज़मीन तलाशती बेचैन आदिवासी स्त्री'-'नगाड़े की तरह बजते शब्द', निर्मला पुतुल, पृ. 9
6. 'संथाल परगना' – वही, पृ. 26
7. 'अपनी माटी', शोध पत्रिका

सहायक ग्रन्थ :

1. 'नगाड़े की तरह बजते शब्द', निर्मला पुतुल
2. 'बेघर सपने', निर्मला पुतुल
3. 'हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श', डॉ. पंडित बन्ने